1.2   1.2 VHP

रामं शरणं गच्छामि



रामं शरणं गच्छामि



दो रुपिया

पुस्तक की समस्त आय संस्कृत प्रचार हेतु खर्च की जावेगी ।

प्रकाशक-
तपोवन-विद्यापीठ
वारासिवनी (म० प्र०)

पात्र-परिचय

पुरुष
राम
लक्ष्मण
रावण
जटायु
मारीच
घोषक
साकेतवासी गण

स्त्री
सीता
मंथरा
शबरी

मुद्रक-सविता-प्रेस,
वारासिवनी (म० प्र०)

दो शब्द :—

यदि यह सत्य है कि भाषा विद्वानों के मस्तिष्क से सोचकर जन साधारण के पैरों से चलती है तो जो भाषा जनपथ गलियारों और पगडंडियों से कतरकर विद्वत् परिषदों और राज परिवेषों में ही चलने का अपना दायरा बनाले वह भाषा शनैः शनैः सिमट कर केवल विशेष वर्गों बुद्धिजीवियों आचार्यों तथा पंडितों के ही अध्ययन मनन चिन्तन तर्क तथा वाणी विलास ही की वस्तु रहकर कालान्तर में विशालकाय ग्रंथालयों की यदि सामग्री बन जावे तो इसमें आश्चर्य ही क्या ।

सम्भवतः यही एक प्रधान कारण दीखता है कि जिस संस्कृत का प्रौढ़ साहित्य इतना असीम गंभीर अतल उर्वर और महान रहा उसका ही बाल और जन साहित्य इतना क्षीण । काश ! आचार्यों और राजपुरुषों के साथ साथ जन साधारण को भी संस्कृत नाटकों में देववाणी ही में बोलने का अवसर मिला होता । राम और दुष्यन्त अपनी प्रेयसियों सीता और शकुन्तला से भी यदि संस्कृत में न बोल सके यह कैसी विडम्बना है ।

ऐसा विशाल और अपरिमेय साहित्य अपने नन्हे-मुन्नों के लिये न तब कुछ दे सका और न अब कुछ देता दीखता है । अपने प्रारंभिक पाठों के रूप में अपने बच्चों के सामने वे ही धातुपाठ और कारक रचना जिसे और आगे आने वाली पीढ़ी कभी भी बरदाश्त नही कर सकती विशेषतः ऐसे समय में कि जब संस्कृत भाषा का अध्ययन जन साधारण की दृष्टि में कुछ अर्थकर नही रहा ।

प्राचीनकाल में आचार्यों आयुर्वेद विशारदों और पुरोहितों के लिये संस्कृत का अध्ययन न केवल अनिवार्य ही था, परन्तु उसके समुचित ज्ञान की गहराइयां भी उतनी ही आवश्यक । व्याकरण में परा दक्षता ही संस्कृत अध्ययन की आधार शिला बनी । 'बाधते' के स्थान में 'बाधति' बिलकुल गवारा नहीं ।

किन्तु आज जब संदर्भ बदल चुके हैं । संस्कृत के

शास्त्रियों और महापंडितों के अतिरिक्त हमें जब जनसाधारण को इतनी क्षमता देनी है कि वे तब और अब के बीच भाषा भाव ज्ञान और विज्ञान की संचार व्यवस्था को समझ सकें। अपने ऋषियों की बपौती को अपने आचार्यों के द्वारा प्रदत्त अच्छाइयों का उचित मूल्यांकन कर उनको आत्मासात् कर सकें तो संस्कृत अध्यापन की ऐसी सुगम शैली हमें अपनानी होगी कि कम से कम भाषा का प्रथम परिचय उसके विशेष मिठास से हो। कुनैन होते हुए भी मीठी रहे। एक बार किसी वस्तु विशेष के प्रति आकर्षण होने पर क्रमशः उसकी दुर्गम गहराइयों को भी मनुष्य पार कर सकता है। पहिले भाषा के प्रति मोह फिर व्याकरण का क्रमशः ज्ञान। बैलों के आगे गाड़ी रखना कभी हितकर नही।

सौभाग्य से हमारी प्रान्तीय भाषाओं और विशेष कर राष्ट्र भाषा हिन्दी में इतना निखार आ रहा है कि उनकी और संस्कृत भाषा की शब्दावलियों में विशेष अन्तर नहीं दीखता। विभक्तियों और धातुचिह्नों को परे कर दिया जावे तो उनमें कोई अन्तर नहीं।

ऐसी समान शब्दालियों की आधार शिला बनाकर देश और काल के अनुरूप बालमनोविज्ञान वातावरण और आधुनिकता को समरस कर विशेष दक्षता के साथ ऐसा प्रारंभिक संस्कृत साहित्य प्रस्तुत किया जा सके जो नन्हे मुन्नों और जन साधारण को अपनी ओर कुछ खींच सके तो हम संस्कृत अध्यापन के प्रथम सोपान पर निश्चयतः पहुंच चुकेंगे। हमें प्रान्तीय भाषाओं और हितोपदेश पंचतंत्रकथा सरित्सागर जैसे किशोरसाहित्य की बीच की खाई उपर्युक्त नवलिखित बाल एवं जन सरल संस्कृत साहित्य से पाटना होगा और इसके लिये सरलतम संस्कृत में बाल और जन गीत नाट्य नृत्य प्रहसन नाटक और मंच के अतिरिक्त अन्य कोई दिशा नहीं दीखती। इस क्रम के विकास के लिये शासन आगे आकर ऐसे ही संस्कृत बोलपटों का निर्माण करा सका तो वह दिन दूर नहीं जब

कठिन संस्कृत भी उतनी ही गले उतर जावेगी जितनी

कव्वालियाँ और ध्वनि चिन्हों के माध्यम से कठिन अरबी फारसी युक्त गेय उर्दू।

ऐसे बाललोक प्रिय सरल संस्कृत के प्रचार को विद्युत गति प्रदान करने के लिये जिलास्तरीय नहीं तो संभागस्तीय संस्कृत कलापथक रखें जावें जो ऐसी रोचक और बोधगम्य विद्या के माध्यम से संस्कृत भाषा के साथ साथ देश निर्माण का कार्य कर सकें।

तपोवन विद्यापीठ का निर्माण इसी एक प्रधान-लक्ष्य को लेकर हुआ है। आयुर्वेद महाविद्यालय और प्राच्यविद्या शोध संस्थान इसके अनुसांगिकलक्ष्य हैं। पिछले बीस वर्षों के लम्बे अभियान में हमें प्रथम सफलता के दर्शन तब हुए जब संस्कृत कवि कुल शिरोमणि महा कवि कालिदास की उज्जयिनी के रंग मच पर हमारे छात्रों द्वारा अभिनीत 'साकेतम्' ने लगभग दस हजार दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। तब से हमारे गीतों की टेपरिकाडिंग के बेशुमार प्रदर्शन हमारे देश के विभिन्न भागों में हो रहे हैं। दिल्ली, वाराणसी, हरिद्वार, भोपाल, सागर, जबलपुर आदि नगरों में हमारे अनेकों प्रदर्शनों को न केवल भूरि-भूरि प्रशसा ही मिली अपितु संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान डॉ० मंडन मिश्र, डॉ० सत्यव्रत दिल्ली, डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी, पं. वटुकनाथ शास्त्री वाराणसी, पं० त्रिलोकधर द्विवेदी हरिद्वार, डॉ० रामजी उपाध्याय डॉ० कृष्णकान्त चतुर्वेदी जबलपुर के साधुवाद हमारी विशेष प्रगति के पाथेय रहे।

संस्कृत पाली प्रकृत के धुरंधर विद्वान दिवंगत डॉ० हीरालाल जैन ने तो इस शैली में 'गीतगोविन्द' की समता और सारल्य देखे। मध्यप्रदेश के वतंमान राज्यपाल महामहिम सत्यनारायणसिंह ने भी इन गीतों को विशेष ध्यान पूर्वक सुनकर हमें कृतार्थ किया।

गावों की पगडंडियों में भी हम जनगीतों और लोक नृत्यों के माध्यम से पहुंचने का प्रयास कर रहे हं। हमारी ग्रामीण

मंडलियों द्वारा लगभग एक डेढ़ घंटे के कार्यक्रम विशेष सफलता

के साथ ग्रामीण के बीच दिये जा चुके हैं इसको मांगलीक
अवसरों बाजारों हाटों में अपने संस्कृत गीतों की टेपरिकार्डिंग
को पहुंचाने की योजना बन चुकी है। केन्द्रीय शासन ने भी हमें
दो हजार रुपये इस विद्या के प्रसार प्रचार के लिये दिये हैं।
प्राथमिक शालाओं के बालकों के लिये भी हम रोचक गेय बाल
गीत प्रस्तुत कर रहे हैं। इसी अभियान की शृंखला में हमारी
गोकुलम्, जनभारती, बाल विलास माला, नवनीत चौरः, लोक
मङ्गलम् पुस्तिकायें निकल चुकी हैं। प्रस्तुत नृत्यगेय नाटिका
'रामं शरणं गच्छामि' उसी शृंखला की एक और कड़ी है। सरल
संस्कृत बाल मासिक पत्रिका 'मुकुलम्' का प्रकाशन भी हमारे
विचाराधीन है। हमारे संस्कृत प्रचार प्रसार के अब तक प्रयासों
का मूल्यांकन कर शासन और जन साधारण से उत्तरोतर पर्याप्त
सहयोग मिल सका तो हमें विश्वास है कि संस्कृत प्रचार प्रसार
के लिये हमारी तपोवन विद्यापीठ वारासिवनी अभूत पूर्व एक
नया लोकमंच देकर संस्कृत भाषा के लालित्य गेयता मधुरिमा
और रोचकता को जन साधारण तक पूर्ण रूप से पहुंचाने में
अवश्य सफल होगी।

अन्त में अपनी नाटिकाओं के सफल निर्देशक आचार्य
सूरजप्रसाद गुप्त वाणिज्य विभागाध्यक्ष, संगीत निर्देशक द्वय
दमयन्ती रावल और श्रीकुमार शुक्ल सफल अभिनेत्रियां और
अभिनेता कुमारी कविता और अनिता भोंडले, सुशीला खंडेलवाल
कु० नीलिमा श्रीवास्तव, कु० मंदा देवगढ़े डॉ० रामछबीला
त्रिपाठी तथा जयप्रकाश चौरे आदि छात्र नर्तकों को धन्यवाद
दते नहीं अघाता कि जिनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान
स्वरूप असंभव रहता।

मैं इस दिशा में अपनी आगे की गति विधिओं को मां
सरस्वती की प्रेरणा पर छोड़कर आप सब की मंगल कामना के
साथ नाटिका के अन्तर्भावों में विलीन होने के लिये पुनः उद्घोष
करता हू 'रामं शरणं गच्छामि'।

शनिवार १२ मई १९७३

तपोवन विद्यापीठ
वारासिवनी (म.प्र.)

—लेखक

नृत्यगीति–नाटिका

रामं शरणं गच्छामि

प्रथमं दृश्यम्

प्रविश्य नटीनटौ प्रार्थयेते

रंगमंच पर प्रवेश कर नटी और नट गान करते हैं।

नटी– रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे।
राजाओं में श्रेष्ठ श्रीराम जी सदा विजय को प्राप्त करते हैं। मैं लक्ष्मीपति भगवान राम का भजन करता हूँ।

नट– रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः।
जिन रामचन्द्रजी ने सम्पूर्ण राक्षस सेना का विध्वंस कर दिया था मैं उनको प्रणाम करता हूँ।

नटी– रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहम्।
राम से बड़ा और कोई आश्रय नहीं है। मैं उन रामचन्द्र जी का दास हूँ।

नट– रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर।
मेरा चित्त सदा भगवान श्रीराम में ही लीन रहे। हे राम मेरा भवसागर से उद्धार कीजिए।

नटी- श्रीरामचन्द्र-चरणौ मनसा स्मरामि ।

में श्रीरामचन्द्र जी के चरणों का मन से स्मरण करता हूँ ।

नट- श्रीरामचन्द्र-चरणौ वचसा स्मरामि ।

श्रीरामचन्द्र जी के चरणों का वाणी से कीर्तन करता हूँ ।

नटी- श्रीरामचन्द्र-चरणौ शिरसा स्मरामि ।

श्रीरामचन्द्र जी के चरणों को सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ।

नट- श्रीरामचन्द्र-चरणौ शरणं प्रपद्ये। (रामरक्षास्तोत्रसे)

तथा श्रीरामचन्द्र जी के चरणों की शरण लेता हूँ ।

(नटी नटौ गच्छतः)

(घोषकः आगत्य ढौलं वादयन् सूचयति)

घोषक आकर ढोल बजाता हुआ सूचना देता है ।

भो साकेतवासिनः ? आनन्दः । आनन्दः । हर्षः ।

हे साकेतनिवासिओ ? आनन्द है । आनन्द है । हर्ष है ।

श्वः रामराज्यतिलकमङ्गलं भविष्यति । सर्वे गायन्तु । नृत्यन्तु । गायन्तु । नृत्यन्तु भोः ।

कल राम का राज्यतिलक मंगल होगा । सभी गावें नाचें । गावें नाचें हो ।

(पुनः पुनः ढौलं वादयन् निष्क्रामति)

बार बार ढोल बजाता हुआ निकल जाता है ।

प्रविश्य साकेत-वासिनः गायन्ति नृत्यन्ति च

साकेतवासी आकर के गीत गाते हैं और नाचते हैं ।

(गीतम)

रामराज्यमङ्गलं भविष्यति पले क्षणे ।
भवतु लोकनृत्यं गृहे गृहे पुरे वने ।
नारीनराः सन्तु प्रार्थनापराः ।
भवतु राजा रामः सुखी देशः ग्रामः ।
वहतु अमृतमयी धारा ॥१॥

पल क्षण में ही रामराज्य का महोत्सव होगा। घर घर नगर और वन में लोकनृत्य हो। नर नारी प्रार्थना करें। राम राजा हों। देश और गांव सुखी हों। अमृत की धारा बहे ॥१॥

राजते पताका प्रासादे कथम् ।
नर्तनं मृदङ्गतूर्यनादे कथम् ।
वस्त्रसुवर्णदानं मधुरपेयपानम् ।
अस्ति हासः विनोदः साकेते कथम् ॥२॥

राजमहल पर कैसा सुन्दर ध्वज लहरा रहा है। मृदंग भेरी के नाद पर अतीव मनोहर नृत्य हो रहा है। कपड़े और सुवर्ण का दान दिया जा रहा है। मधुर पेय (शरबत) का पान हो रहा है। अयोध्या नगरी में अपार आनन्द और खुशी मनायी जा रही है।

यत्र तत्र सर्वत्र सुधा-निर्झरी ।
अलंकृता वधूवत् अयोध्यापुरी ॥
अद्य विद्यते स्वर्गः सुखी वर्गः वर्गः ।
मोददायिनं दिनं मोदप्रदा शर्वरी ॥ ३ ॥

अयोध्यानगरी में सर्वत्र अमृत का झरना बह रहा है और वह अलंकृत नवोढावधू के समान सुशोभित हो रही है। वहां आज स्वर्ग उतर आया है। जनसमूह सुखी है। आनन्द देने वाले दिन और रात्रि भी आनन्दमयी है।

नृत्यन्ति गायन्ति खे सुराङ्गनाः ।
पुष्पाणि वर्षन्ति देवतागणाः ।।
भवतु रामशासनं भवतु सुधाप्राशनम् ।
कथं मोदन्ते धरायां जनाः जनाः ।।४।।

आकाश मण्डल में देवागंनाएं गीत गा रही है तथा नृत्य कर रही हैं । देवताओं के समूह फूलों की वर्षा कर रहे हैं । राम का राज्य होवे । सब लोग अमृत का पान करें । पृथ्वी पर जन समूह किस प्रकार आनन्दित हैं ।

प्रथमः पुरवासी– किन्तु कथं तत् अपशकुनं भवति ।
परन्तु वह कैसा अपशकुन हो रहा है ।

द्वितीयः पुरवासी– कीदृशम् अपशकुनम् ।
कैसा अपशकुन ।

प्रथमः पुरवासी– सा मन्थरा अतीव विकृतं मुखं कृत्वा दत्तचित्तेन शृणोति ।
वह मन्थरा मुख मरोढ़कर ध्यान पूर्वक सुन रही हैं ।

द्वितीयः पुरवासी– सा मन्थरा सदा विकृतमुखिनी कृष्ण-मुखिनी वा भवतु तेन किम् ।
वह मन्थरा टिड़मुही वा कलमुही होवे तो उससे क्या ?

(चलेव आवाम् । इति निष्क्रान्तौ ।)
हम दोनो चलें । और वे निकल जाते हैं ।
पर्दा गिरता है ।



द्वितीयं दृश्यम्

स्थानं- अन्तपुरम्

मन्थरा– (प्रविश्य) ह ह ह ह ह । रामः राजा भविष्यति ? ह ह ह ह ह । राज्ञी कौशल्या राजमाता भविष्यति ? ह ह ह ह । भरतेन सह राज्ञी कैकेयी निर्वासित-जीवनयापनं करिष्यति ? ह ह ह ह ह । नहि । नहि । नहि । तस्य एकमात्रोपायः एकमात्रो-पायः । रामस्य वनवासः ।

(प्रवेशकर) आहा हा हा । राम राजा होगा । रानी कौशल्या राज माता होगी । हा हा हा हा भरत के साथ रानी कैकेयी निर्वासित जीवन व्यतीत करेगी । नहीं नहीं उसका एक मात्र उपाय केवल एक ही उपाय राम का वनवास है ।

कैकेयी– (आगत्य) मन्थरे ! मन्थरे ! कुलटे ! प्रिय-रामस्य वनवासः कथम् ।

(आकर के अरी मन्थरा मन्थरा ओ कुलटा प्यारे राम का वनवास कैसा ।

मन्थरा– अन्यथा भवत्यः वनवासः भविष्यति ।

नहीं तो देवी जी आपका बनवास होगा ।

ककेयी– तस्य प्राक् तव एव वनवासं करिष्यामि पिशा-चिनि ।

उसके पहले में तेरा बनवास करूंगी पिशाचिनी ।

मन्थरा– यदि भाग्ये लिखितं तत्तु भविष्यति एव ।

किन्तु –

गीतम्

अग्रे नहि तु अहं सेविष्ये ।
भवतु भवेत् यत् तु मे भाग्ये, भवतु भवेत् भविष्ये ।।
भविष्यति तु रामः भूपालः, कौशल्या नृपमाता ।
अस्माकं भाग्येषु लिखति, दासत्वं सदा विधाता ।।
अहं न अवमन्ये निजभाग्यं, तव च भविष्ये चिन्ता ।
कां 'राजमाता' इति नगरे, कथयिष्यति च किल जनता ।।
जीविष्यामि क्षणं न महिषि हे, नहि नहि इदम् अलीकम् ।
तृणं न मन्ये चिरंजीव त्वं भवतु कस्य अपि तिलकम् ।।

यदि भाग्य में बनवास लिखा है तो वही होगा । किन्तु आगे में आपकी सेवा न करूंगी । जो मेरे भाग्य में होगा होने दो, भविष्य में जो होगा होने दो । राम अब राजा होंगे और कौशल्या राजमाता होगी । हमारे भाग्य में सदा दासता ही भगवान ने लिखी है । मैं अपने भाग्य की कोई परवाह नहीं करती । नगर में किसको जनता राजमाता कहगी ? हे रानी अब मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रहूंगी । यह बिल्कुल झूठ नहीं है । किसी का भी राजतिलक हो इसकी मुझे कुछ भी परवाह नहीं है । तुम तो चिरजीविनी रहो ।

कैकेयी– कुलटे ! सर्पिणि ! पिशाचिनि ।

(ते गच्छतः)

कुलटा ! सांपिन ! पिशाचिन ! [वे जातीं हैं]

पटाक्षेपः

—:—

तृतीयं दृश्यम्

(स्थानम्–अयोध्यायाः राजमार्गः)

(चत्वारः साकेतवासिनः प्रविशन्ति)

चार अयोध्यावासी प्रवेश करते हैं।

सब---राजमार्गे कस्य सः उद्घोषः। कथं सः कोलाहलः।
किमर्थं सा अस्तव्यस्तता? चलेम। धावेम। धावेम।

(नेपथ्ये)

रामराज्यं शीघ्रं भवेत्। रामराज्यं शीघ्रं भवेत्।
रामराज्यं शीघ्रं भवेत्।

(जन समूहः प्रविशन्)

राज मार्ग पर यह कैसा शोर है। यह कैसा कोलाहल है।
किस कारण यह अस्तव्यस्तता है। चलें दौड़े। दौड़े।

(पर्दे के अन्दर)

रामराज्य शीघ्र हो। रामराज्य शीघ्र हो। रामराज्य शीघ्र हो।

(लोगों का झुण्ड प्रवेशकर)

तत् राज्यरोहणं, परिवर्तनं कथम्।
कस्मात् कारणात्, याति राघवः वनम्॥
कैकेयी कुत्र कुत्र गता कुटिला मन्थरा।
भारेण वा तयोः गलति कथं नहि धरा॥
हर्षस्य तत् क्षणं, परिवर्तनं कथम्।
कस्मात् कारणात् याति राघवः वनम्।१।

राम के राज्यभिषेक में यह परिवर्तन कैसा? किस कारण से राम बन को जा रहे हैं। वह कैकेयी कहां है। कुटिल मन्थरा कहां गई। उनके भार से धरती क्यों नहीं गलती। उस सुख की बेला में यह परिवर्तन कैसा? किस कारण से राम बन को जा रहे हैं।

वयं न सहिष्यामहे, अपरां व्यवस्थाम् ।
वयं न सहिष्यामहे, कैकेयी–कटु–कथाम् ॥
विद्रोहिणः वयं, करवाम विप्लवम् ।
कस्मात् कारणात् याति राघवः वनम् ॥२॥

हम राज्य में यह दूसरा प्रबन्ध नहीं सहेंगे । हम कैकेयी की कुटिल कथा को नहीं सहेंगे । हम विद्रोही हैं । हम क्रान्ति करेंगे । राम किस कारण से वनवास को जाते हैं ।

रामेण विना मरिष्यन्ति नगरवासिनः ।
रामः न गमिष्यति न गमिष्यति दृढ़ः पणः ॥
विद्रोहिणः वयं करवाम विप्लवम् ।
कस्मात् कारणात् याति राघवः वनम् ॥३॥

राम के बिना सभी नगरवासी प्राण त्याग देंगे । राम वन को नहीं जावेंगे । यह हमारी अडिग शर्त है । हम विद्रोही हैं । क्रान्ति करेंगे । राम वन को क्यों जा रहे हैं ।

नेता– रामः राजा–(राम राजा……)
सर्वे– शीघ्रं भवेत् ।
[जल्दी सिंहासन को सुशोभित करें]
नेता– कुटिलमन्थरा–(कुटिल मन्थरा)
सर्वे– शीघ्रं म्रियेत् (मूर्दाबाद)
नेता– रामः राजा–
सर्वे– शीघ्रं भवेत् ।
नेता– कुटिलमन्थरा
सर्वे– शीघ्रं म्रियेत्–(मूर्दाबाद)

पटाक्षेप

चतुर्थं दृश्यम्

स्थानम्–अन्तःपुरम्

(रामः स्ववनगमनं सीतां सूचयति)

(राम अपने वनगमन की सूचना सीता को देते हैं।)

रामः– वल्लभे अहं त्यजामि गृहम् ।
त्यक्त्वा छत्र मुकुट चमराणि, प्रिये गच्छामि वनम् ।
भवति राजतिलकः ममप्रेयसि, ननु दण्डकवनवासे ।
पित्रादत्तं मे च शासनं, शबरकिरातनिवासे ।
कस्य ललाटे लिखति दीनवनजनसेवां विधाता ।
कस्य पिता स्नेही वनदेवः वनदेवी वा माता ।
अनेकानि कष्टानि कानने, विपुलं सुखं निकेते ।
अतः तिष्ठ मातुः सेवायां हे मम प्रेयसि सीते ।

हे प्रिये मैं घर त्याग कर रहा हूं। मैं छत्र मुकुट चमर को त्याग कर हे प्रिये मैं वन जा रहा हूं। हे प्रिये अब मेरा दण्डकवन में राजतिलक होने वाला है। शबर और किरातों की बस्ती में मुझे पिता ने राज्य दिया है। दीन हीन बनवासियों की सेवा करना किसके भाग्य में लिखा है। वन देवता किसके पिता और वनदेवी किसकी माता होंगी। जंगल में बहुत से दुःख हैं और घर में बहुत से सुख हैं। इसलिए हे प्रियतमे मां की सेवा में ही रहो।

सीता– प्राणधन अनुचलामि वनवासे ।
त्वया विना मम वृथा जीवनं, अस्मिन् साकेत निवासे
तव दीपे विलसति मे ज्योतिः तव कूले मम धारा ।

तव पुष्पे प्रवहति मे गन्धः त्वया विना भू कारा ।
क्षणे क्षणे तव चरण-दर्शने, विपिने गिरौ विहारः ।
पले पले तव दृष्टि-प्रपातः, मम च दिव्य-शृंगारः ।
कण्टकानि कुसुमानि भवन्ति तु परि-संवाद प्रसङ्गे ।
नरकपुरी अपि देवपुरी हे नाथ भवति तव सङ्गे ।

हे प्राण धन मैं भी आपके पीछे वनवास को चलती हूं । इस साकेत के राजमहल में तुम्हारे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है । तुम्हारे दीपक में मेरी ज्योति जलती है । तुम्हारे किनारे मेरी धारा बहती है तुम्हारे बिना संसार कारावास है । क्षण क्षण में तुम्हारे चरणों के दर्शन जंगलों और पर्वतों पर विहार स्वरूप होंगे । प्रतिक्षण की तुम्हारी कृपा दृष्टि मेरा शृंगार होगी । वन में पारस्परिक वार्तालाप के समय कांटे भी फूल बन जावेंगे । हे नाथ तुम्हारे साथ तो नरक-पुरी भी देवपुरी हो जावेगी ।

पटाक्षेप

———

पञ्चमं दृश्यम्

(गंगातटे नाविकानां नृत्यम्)

(गंगा के किनारे पर नाव चलाने वालों का नाचना)

(लोक गीतम्)

वयं भो अरण्यपुत्रनाविकाः गंगायाः गभीरे नीरे नीरे ।
नावं नयामः समीरे तीरे तीरे तीरे तीरे तीरे तीरे वयं भोः ।
जयः गंगायाः । जयः गंगायाः । जयः गंगायाः ।

सर्वे यदा कदा वयं, यामः दावं दावम् ।
चालयामः सायं प्रातः वयं जले नावम् ।। वयं ।।
भोजनं वनफलं तथा वल्कलं च वासः ।
गिरौ गिरौ तरौ तरौ अस्माकं निवासः ।। वयं ।।
शनैः शनैः यदा चलति जले, यानम् ।
चलति मलयवायुः यदा वयं गायामः गानम् ।। वयं ।।

अरे हम जंगल के पुत्र मल्लाह हैं। हम गंगा के गहरे पानी में, पवन में नाव को किनारे किनारे ले जाते हैं। गंगा मां की जय हो गंगा मा की जय हो। गंगा मां की जय हो।

हम सब कभी कभी जंगल जंगल घूमते हैं। तथा सुबह शाम जल में नाव चलाते हैं। वन के फल हमारा भोजन है और पेड़ों की छाल हमारे कपड़े हैं। पहाड़ पहाड़ और वृक्ष वृक्ष पर हमारा निवास है। धीरे धीरे जब जल में नौका चलती है। जब मलय वायु चलती है, तब हम गाना गाते हैं।



षष्ठं दृश्यम्

(पञ्चवटय्यां रामसीता लक्ष्मणः)

(नेपथ्ये) गीतम्

(पर्दे के अन्दर) गीत गाया जाता है।

रामलक्ष्मणसीताः निवसन्ति विपिनवासे ।
धारयन्ति वल्कलं रमन्ते वृक्षलता-पाशे ।।
मज्जति पम्पासरसि मैथिली सिञ्चति उद्यानम् ।
शृणोति सायं प्रातः नित्यं विपिनविहगगानम् ।।

यदा कदा पुष्पाणि आनयति गुम्फति सा मालाः ।
कथयति सा विविधां कथां सदैव विपिन-बालाः ।।
अलंकरोति विविध-पुष्पैः सीता आवासम् ।
दृष्ट्वा सा मोदते प्राङ्गणे विपिनमृगोलासम् ।।
ह्वयति मयूरमृगान् मैथिली शशकं वा नित्यम् ।
विहसति लसति मोदते दृष्ट्वा काननलालित्यम् ।।
एकाकिनी मैथिली बहुधा गायति मधुगीतम् ।
चुम्बति सा रामेण सुन्दरं पुष्पम् आनीतम् ।
धन्या सा मेदिनी यत्र शोभते जनकबाला ।
फुल्लति फलति तां दृष्ट्वा सा मधुर विपिन-माला ।।
पर्वतात् शिखिरात् पतति सा धवला निर्झरिणी ।
श्वेतरक्तपुष्पैः शोभते हरिता वनधरणी ।।
धावति कूर्दति यत्र तत्र सर्वत्र मृगः परितः ।
यदा कदा अनुवदति जनकतनुजां शुकः हरितः ।।
कूजति पिकः सारिका गायति, गायति ललितखगी ।
यत्र तत्र अनुचरति जनकतनयां विलोलमृगी ।।
सुन्दराणि प्रष्पाणि आनयति कश्चित् वनवासी ।
मधुरफलानि आनयति कश्चित् शबरः मृदुभाषी ।।
यदा कदा लक्ष्मणः आनयति मधुरं विपिनफलम् ।
विहसति खादति तदा पिबति सा निर्झरमधुरजलम् ।।
विहसति रामः दृष्ट्वा तं सेवारतसौमित्र्,
नटति प्रकृतिः दृष्ट्वा विपिने तत् रघुकुलचित्रम् ।।
धन्या सा मोदिनी यत्र सा रघुकुलवधुसीता ।
धन्यः देशः यस्मिन् सा नारी पावन-गीता ।।

राम लक्ष्मण और सीता वन में निवास करते हैं। वृक्षों की छाल उनके कपड़े है और वे लताओं को झुरमुट में रमण करते हैं। सीता पम्पासर मे स्नान करती है। और अपनी वाटिका को सींचती है। रोजाना सुबह शाम बनके पक्षियों के गीत सुनती है। कभी कभी वह फूल लाकर मालाएं बनाती है। वह सदा विपिन बालाओं से विविध प्रकार की कथा कहती है। सीता अपनी कुटिया को बन के फूलों से सजाती है। वह आंगन में हरिणी का नाच देखकर हर्षित होती है। सीता हमेशा मोर हरिण खरगोशों को बुलाती रहती है। वह जंगल के लालित्य को देखकर आनंदित खुश और प्रसन्न होती है। अकेली मैंथिली बहुधा मधुर गीत गाती है। राम के द्वारा लाए गए सुन्दर फूलों को चूमती है। वह धरती धन्य है जहां जनक जी की पुत्री सीता शोभायमान है। जंगल की श्रेणियां सीताजी को देखकर फलती और फूलती हैं। पर्वत के शिखर से सफेद झरना वह रहा है। वन की हरित धरणी सफेद और लाल फूलों से सुशोभित है। मृग सीता के आसपास चारों तरफ घूमता तथा उछल रहा है। कभी कभी तोता सीता की कही हुई बातों को दुहराता है। कोयल बोलती है। मैंना गाती है। और चिड़िया चह चहाती है। इधर उधर सीता जी का हरिणी पीछा करती है। कोई वनवासी सुन्दर फूलों को लाता है। कोई मीठा बोलने वाला शबर मधुर फल लाता है। कभी कभो लक्ष्मण जंगल से मीठे फल लाते हैं। सीता जी तब हंसती है गाती है और झरने का शीतल जल पीती है। जब राम सेवा परायण लक्ष्मण को देखकर हंसते है तब जंगल में रघुकुल का चित्र देखकर प्रकृति नाचती है। वह धरती धन्य है जहां रघुकुल बधू सीता जी हैं। वह देश धन्य है जहां सीता जैसी नारी रूप गीता विद्यमान है।

(राम लक्ष्मणौ वनशोभां पश्यमाणौ कुटीरस्य पृष्ठ-भागे अगच्छताम्। कश्चित् मयूर : आगत्य सीतायाः गीतस्य तालेन सह नृत्यति।)

राम और लक्ष्मण वन की शोभा देखते हुए कुटी के पीछे चले जाते हैं। कोई मोर आकर सीता के गीत की ताल के साथ नाचता है।)

सीता - गीतम्

नृत्यरे मयूर नृत्य घने विद्यमाने ।
नृत्य नृत्य यत्र तत्र सुन्दरे विधाने ।।

(१)

नटति नश्च वनशाला ।
नटति साधि वनमाला ।।
नटति त्वया सह प्रकृतिः ।
वन - विहंग - गाने ।।

(२)

नृत्यति सा श्वेतझरी ।
नृत्यति सा हरित-दरी ।।
नटति कथं सः वायुः
मन्थरे प्रयाणे ।। नृत्य ।।

(३)

नटति दण्डकारण्यम्
नटति सृष्टिलावण्यम्
द्रष्टुं देवाः नभसि
मण्डिते विमाने ।।

नाच रे मयूर नाच आकाश में मेघों के घिर आने पर नाच और जहां तहां सुन्दर रीति से नाच । हमारी यह वनशाला नाच रही है । तथा यह वन की श्रेणी भी नाचती है । हे मोर देख तेरे साथ पक्षियों के गान से युक्त प्रकृति भी नृत्य कर रही है वह सफेद झरना भी नाचता है वह हरी भरी घाटी नाचती है और धीरे धीरे चलता हुआ यह पवन कैसा सुन्दर नाच कर रहा है । यह दण्डकारण्य नाचता है । सृष्टि का सौन्दर्य भी नृत्य कर रहा है । इस नृत्य को

देखने के लिए देवता सुन्दर विमान पर बैठकर आकाश में आ गए है।

(राम लक्ष्मणौ आगतौ)

राम और लक्ष्मण आते हैं।

(स्वर्णमृगवेषे मारीचः यत्र तत्र सर्वत्र सीतयाः पुरतः धावति कूर्दति च।)

सुवर्ण मृग के वेश में मारीच सीता के आगे दौड़ता और कूदता हैं।

गीतम्

सीता—(रामं प्रति) स्वर्ण-हरिणः हन्येत त्वया।
तस्य स्वर्णत्वक् आर्यपुत्र दृश्यते प्रियं च मया।।
कथं परिभ्रमन् कथमं उत्पतन् धावति पुरतः वेगे।
वशीकृत्य अस्मान् सुसफलः सः भवजन्म-प्रयोगे।।
क्षणं अदृश्यः क्षणं च दृश्यः क्षणं समीपे दूरम्।
धावति यत्र तत्र परितः अस्माकं पर्णकुटीरम्।।
धन्यवती किल भविष्यामि प्राप्ते तस्मिन् मृगचर्मणि।
अनुधाव हे नाथ तिष्ठ शीघ्रं त्वं मृगयाकर्मणि।

इस स्वर्ग मृग का आप शिकार करें। हे आर्य पुत्र उसका सुनहला चमड़ा मुझे बहुत ही सुन्दर दीखता हैं। कैसा घूमकर कैसा कूदकर आगे जोर से दौडता है। वह हमको आकर्षित कर इस संसार में जन्म लेने के प्रयोग में सफल हो गया है। कभी छिप जाता है कभी देखा जाता है कभी पास आता है कभी दूर चला जाता है। हमारे पर्णकुटी के आसपास ही दौड़ता है। इस मृग का चमड़ा मुझे मिल जाये तो मैं धन्य हो जाऊंगी। हे नाथ इस मृग के शिकार के लिए तुम जल्दी से इसके पीछे दौडो।

रामः— सीते त्वम् असि शिशुगुणशीला ।
नहि ज्ञायते दुष्टदनुजानां देवि विचित्रा लीला ।
दृष्टः श्रुतः केन भुवि प्रेयसि स्वर्णमृगः संसारे ।।
मृगवेशे वञ्चकः राक्षसः नः वञ्चनव्यापारे
सः नहि हरिणः न वा तस्य किल स्वर्णमय प्रियपृष्ठम्
अस्माकं वञ्चकः देवि विस्मर तं दनुजं दुष्टम् ।
व्यथितं मनः स्फुरति मे नयनं नहि इष्टं च भविष्ये
किन्तु त्वया आदिष्टं यत् तत् सत्यं अहं करिष्ये ।।
(हरिणम् अनुगच्छति)

हे सीते तुम शिशु जैसी भोली हो। तुम राक्षसों के विचित्र लीला को देवि नहीं जानती। हे प्रेयसि संसार में स्वर्ण का मृग किसने देखा और सुना है। मृगवेश में राक्षस हमें ठगने की कार्यवाही कर रहा है। वह न तो हरिण ही है और न उसका चर्म ही सुनहला है। वह हमें छलाने वाला है। उस दुष्ट राक्षस को भूल जावो। मेरा मन व्यथित हो रहा है। मेरी आंख फड़क रही है। भविष्य भी मुझे कुछ भला नजर नहीं आता। परन्तु जो तुमने आज्ञा दी है वह मैं पूर्ण करूंगा।

(रामः धनुषं आदाय निर्गच्छति)
रामः धनुष लेकर निकल जाते हैं।
(नेपथ्ये)
हे सीते। हे लक्ष्मण।
(पर्दे के अन्दर हे सीता हे लक्ष्मण



सीता– 'हे लक्ष्मण' इति कः अवदत् ।

किं वा प्रिय-रघुवंश-नायके काचित् व्यथा आपतत्

व्यथितस्वरेण केन उच्चरितः 'हे लक्ष्मण' इति शब्दः ।।

श्रुत्वा तं च मनसि भावः मे अभवत् व्यथितः क्षुब्धः ।

हससि कथं हे तात मनसि तव भवति न किंचित क्लेशः ।।

किम् उद्भवति बन्धु-संतापे आनन्दः च विशेषः ।।

दृष्ट्वा मुखमुद्रां मनसि भावं च अन्यथा मन्ये ।

कथं हससि मत्पार्श्वतः त्वं भ्रातरि दुःखे उत्पन्ने ।।

हे लक्ष्मण ऐसी आवाज किसने लगाई है। क्या रघुवंश के नायक पर कोई आपत्ति आ पड़ी है। हे लक्ष्मण ऐसा शब्द दुखित स्वर से किसने उच्चारण किया है। उसको सुनकर मेरे मन के भाव दुखित और क्षुब्ध हो गए हैं। हे तात तुम क्यों हंसते हो क्या तुम्हारे मन में कोई क्लेश नहीं है। क्या भाई पर आपत्ति आ पड़ने पर कोई विशेष आनन्द हो रहा है। तुम्हारे मुख की मुद्रा देखकर तुम्हारे मन के भाव के प्रति मुझे संदेह होता है। अपने भाई के दुख उत्पन्न होने पर तुम मेरे आसपास क्यों हंस रहे हो।

–गीतम्

लक्ष्मणः–मां त्वं किम् अवदत् हे मातः ।

कुटीरस्य रक्षार्थं भगवति मां तु अदिशत् तातः ।

देवि न त्वं जानासि तु भ्रातरि, अयं संशयः व्यर्थः ।

पीडयितुं रघुवरं पृथिव्यां, नहि कः क्षणं समर्थः ।।

यदि इच्छसि गच्छामि देवि, अवधार्य शिरसि आदेशम् ।

मम शपथेन शापिता मातः, गच्छ वहि नहि लेशम् ।।

यदि लंघ्यते त्वया सा रेखा, नश्यति नः मर्यादा ।

रेखायाः लंघने मातः, अकल्पनीया बाधा ।।

हे माता। यह तुमने मुझसे क्या कहा। भगवति पर्णकुटी के रक्षा के लिए तात ने मुझे ही आदेश दिया है। हे देवि आप नहीं जानती हैं कि भाई के प्रति यह संशय व्यर्थ है। इस धरती पर रघुवर को क्षण भर दुख पहुंचाने की सामर्थ किसी में नही है। यदि आपकी इच्छा है तो मैं आपका आदेश मानकर जाता हूं। हे माता तुम्हें मेरी सौगन्ध है। आप यहां से भी बाहर न जायें। यदि आपने इस रेखा को लांघ दिया तो हमारी मर्यादा नष्ट हो जायेगी। हे माता रेखा के लांघने पर अकल्पनीय बाधा उपस्थित होगी।

(लक्ष्मणः शरेण कुटीरस्य द्वारे रेखां करोति। शरसंधानं च कृत्वा हरिणं प्रति अनुधावति)

लक्ष्मण बाण से कुटी के द्वार पर रेखा करते हैं और धनुष पर बाण चढ़ा कर हरिण के पीछे दौड़ते हैं।

रावणः-(भिक्षुक-वेशे प्रविश्य) भिक्षां देहि। भिक्षां देहि

-गीतम्-

दीयते देवि त्वया मे भिक्षा।
भिक्षायां वर्तते भुवि नरनारी-धर्म-परीक्षा
परिभ्रमामि विपिनात् च विपिने अहं सदाशिव-
भक्तः।
भिक्षाभोजी भूतलशायी ननु-संसार-विरक्तः।।
जपतपरत-संयमी वेदपाठी च सदाव्रतधारी।
विपिनकन्दरापर्वतवासी, वनतरुवल्कलधारी।।
अपरिचितः नहि दण्डकविपने, विख्यातः मे वर्गः।
मम दातृभिः अनायासं, लभ्यते भुवि च नवस्वर्गः।।
अभ्यन्तरे गृह्यते मया न, भवतु च या का भिक्षा।
या गृह्यते अधः नभसः सा ग्राह्या इति गुरु-शिक्षा।।

(भिखारी के वेश में प्रवेश कर) भिक्षा दो भिक्षा दो। हे देवि आपके द्वारा मुझे भिक्षा दी जावे। पृथ्वी पर भिक्षा के द्वारा नर नारियों की धर्म परीक्षा होती है। मैं वन वन घूमने वाला भगवान शंकर का भक्त हूं। भिक्षा पर जीवित हूं धरती पर सोता हूं और संसार से विरक्त हूं। जप और तप में लगा रहता हूं संयमी हूं वेद का पाठ करने वाला और वृत धारी हूं। जंगल पर्वत और कन्दरा ही मेरा निवास स्थान है। वल्कलवस्त्र पहनता हूं। इस दण्डक वन में मुझसे कोई अपरिचित नहीं है मेरी जाति सभी को मालूम है। मुझे भिक्षा देने वालों को पृथ्वी पर बिना परिश्रम के नया स्वर्ग मिल जाता है। भिक्षा भले ही किसी भी प्रकार की हो मैं उसे भीतर जाकर गृहण नहीं करता। मेरे गुरू की शिक्षा है। कि आकाश के नीचे ही भिक्षा स्वीकार की जावे।

(रावणः सीताम् अपहरति, सीता रोदिति)

रावण सीता का हरण करता है सीता रोती है

सीता- तिष्ठ – —तिष्ठ— – – भो तिष्ठ।

आगच्छति रघुनाथः अधुना त्वां हनिष्यति दुष्ट ॥
सिंहे गते हरति सिंहीं, यथा च वञ्चकः गृध्रः।
तथा हरति त्वं माम् अपि तु नारीं रे कातर क्षुद्र।
मुञ्च मुञ्च रे दुष्ट प्राप्स्यसि च त्वं घोरं परिणामम
तव वंशः अचिरेण भविष्यति नष्टः ध्रुवं प्रकामम्

ठहर! ठहर! रे ठहर। अभी रघुनाथ आते है। रे दुष्ट वे तेरा संहार अभी करेंगे। सिंह के चले जाने के पश्चात् जिस प्रकार गीदड़ सिंहिनी को छीनने का प्रयास करता है उसी प्रकार रे नीच डरपोक तू मेरा और नारी का अपहरण कर रहा है। छोड़ छोड़ रे दुष्ट अन्यथा तुझे घोर परिणाम भुगतने होंगे। यह सत्य है कि तेरा वंश क्षण भर में ही विनष्ट हो जायगा।



सप्तमं दृश्यम्

स्थानम्--वनमार्गः

(तत्क्षणं जटायुः आगत्य रावणं युद्धाय आमन्त्रयति)

जटायुः- (गीतम्)

युध्दस्व युध्दस्व दुष्ट यासि कुत्र त्वम् ।
जननीं अपहरति तिष्ठ त्वां हनिष्याम्यहम् ।।
वन्दन्ते पादपंकजं यस्याः देवताः ।
गायन्ति किन्नराः ते यस्याः शुभाकथाः ।।
अपहरति जगन्मातरं रे दुष्ट कथं ताम् ।
ज्वालयितुं स्थास्यति नहि भुवि कोऽपि तव चिताम्।।
पापस्य फलं प्राप्यसि रे दुष्ट त्वम् अचिरम्
चञ्चुना मम गमिष्यति हि क्षणं दुष्ट यमपुरम् ।।

तत्काल जटायुः आकर के रावण को युध्द का निमन्त्रण देता है।) अरे दुष्ट तू कहां जाता है युध्द कर! युध्द कर! ठहर तूने माता का हरण किया। मैं तेरा बध करूंगा। जिस सीता जी के चरणों की वन्दना देवता करते हैं और किन्नर जिसकी शुभ कथाओं का गान करते हैं, अरे दुष्ट उस जगत् माता का तू हरण कर रहा है। संसार में तेरी चिता में अग्नि देने वाला भी कोई नहीं होगा। अरे दुष्ट इस पाप का फल तू शीघ्र ही भोगेगा। मेरी चोंच के द्वारा तू क्षण भर में ही यमपुरी को पहुंचा दिया जायगा।

(परस्परं युध्देते:। मूर्छित: जटायु: भूमौ निपतति। रावण: सीतां समादाय आकाशमार्गेण गच्छति।

रावण और जटायु: आपस में युध्द करते हैं। जटायु मूर्छित होकर जमीन पर गिर जाता है। रावण सीता को लेकर आकाश मार्ग से चला जाता है।

अष्टमं दृश्यम्

(लक्ष्मणेन सहित: राम: सीतां मार्गयन् विलपति)
लक्ष्मण के साथ राम सीता को खोजते हुए विलाप करते हैं।

सीते ? सीते हे सीते ?
कथय कथय त्वं कुत्र कुत्र मम जीवन-पावन-गीते,
स: वृक्ष: वल्लरी लता सा अस्माकं वनशाला,
नृत्यति नीरवता - बेताली दृश्यावली कराला।
तत्र अतिष्ठत् तत्र अक्रीडत् तत्र असिञ्चत् वृक्षम्।
लीला - चित्रपटं सीताया: परिवर्तते समक्षम्॥
भविष्यति च स्वर्गीय-पितु: मनसि तु स: भाव: व्यर्थ:,
नारी-रक्षायै रघुवंशे नहि हा। को ऽपि समर्थ:।
रघुवंशज - रामस्य सहाय: विपिने यदि सौमित्र:।
वैदेहीम् अरक्षत् नहि कौशल्या-कातर - पुत्र:॥
विदर! विदर हे! वसुधे, यच्छतु मे शरणं तव गर्भ:।
भवतु जनै: विस्मृत: मुदां रामस्य सन्दर्भ:॥

सीते सीते हे सीते हे मेरे जीवन की पावन गीते। कहो! कहो तुम कहां हो। वह वृक्ष है। वही लता है। वह हमारी पर्णकुटी है। नीरवता की पिशाचिनी बेताली नाच रही है। कितना भयावन

दृश्य है। वहां तुम खड़ी थी। वहां तुम खेलती थी। वहां तुम वृक्ष को पानी देती थीं। सीता की लीलाओं का चित्रपट मेरी आखों के सन्मुख चल रहा है। मेरे स्वर्गीय पूर्वजों के मन में यह विचार, व्यर्थ ही होगा कि रघुवंश में अब अपनी नारियों की रक्षा के लिए भी सामर्थ्य नहीं रहा। वन में राम का सहायक लक्ष्मण जैसा वीर होने पर भी कौशल्या का कायर पुत्र राम वैदेही की रक्षा न कर सका। हे पृथ्वी तू विदीर्ण हो। तेरा गर्भ मुझे शरण प्रदान करे ताकि संसार में लोग राम का संदर्भ ही भूल जाय।

नवमं दृश्यम्

स्थानम्—दण्डकारण्यम्

(लक्ष्मणेन सह विलपन् रामः पञ्चवटीतः इतस्ततः सीताम् अन्वेषति। मार्गे रावणप्रहारेण आहतं जटायुम् अवलोक्य रामः तत्रैव तिष्ठति।)

लक्ष्मण के साथ विलाप करते हुए राम पञ्चवटी के इधर उधर सीता को खोजते हैं। मार्ग में रावण के प्रहार से घायल जटायु को देखकर राम वहीं पर रुक जाते है।

जटायुः– (रामम् अवलोक्य) हे भगवन् ! जगज्जननीं सीताम् अपहृत्य नीयमानं रावणं प्रति प्रतिशोध-भावेन चञ्चुना प्रहर्तारं मां सः खड्गेन प्राहरत्। मम अङ्गानि क्षतविक्षतानि अकरोत्। मम प्राणाः भगवतां चरण - रजस्पर्शाय एव शरीरे तिष्ठन्ति। अतः हे भक्तवत्सल प्रभो ! स्वचरणरजसा माम् उपकृत्य स्वपुरं नेय।

(राम को देखकर) हे भगवन् जगज्जननी माता सीताजी का हरण कर के ले जाते हुए रावण के प्रति सीता को मुक्त कराने की भावना से चोंच द्वारा प्रहार करने वाले मुझ पर उसने तलवार का प्रहार किया और मेरे शरीर (अंगों) को घायल कर दिया। मेरे प्राण हे भगवन् आपके चरणों की रज के स्पर्श के लिए ही शरीर में है। इसलिए हे भक्तवत्सल प्रभो अपने चरणों की रज से मेरा उपकार कर मुझे अपने धाम को भेज दीजिए।

राम:-त्वां दृष्ट्वा अहं धन्योऽस्मि जटायु। एवं विधानाम् असहायानाम् आर्तानां परित्रातारं शत्रुणा सह युद्धे दलित - शरीरं भवन्तं दृष्ट्वा अहं धन्योऽस्मि। तव इच्छा सफला भवेत्। सदेहं ममपुरं गत्वा त्वम् तत् अलंकुरु।

तुम्हें देखकर मैं धन्य हूं जटायु। ऐसे असहाय पीड़ित जन की रक्षा करने वाले, शत्रु के साथ युध्द में घायल शरीर वाले आपको देखकर मैं धन्य हूं। तेरी इच्छा सफल हो। देह सहित मेरे पुर को तुम अलंकृत करो।

(सहसा अन्धकार: भवति। तस्य अन्धकारस्य मध्यात् एकं दिव्यं ज्योतिः गगनम् उत्पतति)

अकस्मात् अंधेरा होता है। उस अंधकार के मध्य से एक दिव्य ज्योति आकाश को जाती हुई दिखाई देती है।

दशमं दृश्यम्

(स्थानम् —शबरी — कुटीरम्)

(रामस्य आगमनं ज्ञात्वा शबरी इतस्ततः प्रमत्ता इव परिभ्रमति)

राम का आगमन जानकर भीलिनी इधर उधर पागल की तरह घूमती है।

शबरी-आगच्छति, आगच्छति, मे उटजं रामः आगच्छति। गगन किं त्वं जानासि ? धरे किं त्वमपि जानासि ? सद्यैव रामः मे उटजं आगच्छति। धरे ? नृत्य। पवन ? त्वमपि नृत्य। तरवः लताः पुष्पाणि नृत्यन्तु नृत्यन्तु सर्वे अपि नृत्यन्तु ? भक्त-वत्सलः रामः मे उटजम् आगच्छति।

आ रहे हैं, आ रहे हैं मेरी कुटिया में राम आ रहे हैं। हे आकाश क्या तू जानता है ? हे पृथ्वी क्या तू भी जानती है, शीघ्र हां राम मेरी झोपड़ी में आ रहे हैं। हे पृथ्वी तू नाच हे आकाश तू नाच हे पवन तू भी नाच, वृक्ष, लता, फूल आदि सभी नाच करे। भक्त-वत्सल राम मेरे घर आ रहे हैं,

-गीतम्-

आगच्छति उटजं मम रामः नृत्य हृदय मम् नृत्य वने हे
आनन्दः आनन्दः परितः यत्र तत्र भुवि वा गगने हे ।।
नृत्य गगन हे नृत्य धरे हे, गिरे तरो हे क्षणे क्षणे हे।
कण कण तृण तृण नृत्य नृत्य हे, नृत्य कानने त्वं
विजने हे।
खगमृग-क्रीडे नृत्य नृत्य हे, लते पुष्पमलयज-पवन हे।
आनन्दः हासः उल्लासः सुर-नृत्यं निर्झर-चरणे हे।
क्षिपति रविः कुंकुमं केशरं मुखर-पृथिव्यः आवरणे हे
प्रभुपद-रजः लभेयम् शिरसि, भुवां स्वजन्म-सफल
करणे हे।।

(राम-लक्ष्मणौ सहसा आगच्छतः तौ दृष्ट्वा चरणकमलेषु पतनोन्मुखिनी शबरी पतति उच्चैः वदति च)

शबरी-रामं शरणंगच्छामि ! रामं शरणं गच्छामि !!
रामं शरणं गच्छामि !!!



